ड्राइविंग लाइसेन्स

जयश्री रॉय

ड्राइविंग लाइसेन्स

गौतम के सामने वह थप्पड़ मेरे गाल पर नहीं, रूह पर पड़ा था। आँखों के सामने तैरते स्याह धब्बों के पार मैंने मुड़कर देखा था - वह हमेशा की तरह दूसरी तरफ देख रहा था। वह यहाँ, इस कमरे में, इस घर में नहीं था। कभी नहीं होता... उसका झुका हुआ सर, गिरे हुए कंधे मेरी नजरों के सामने धुँधला जाते हैं। उसका यूँ हो कर न होना... मेरे

भीतर कुछ चिलकता है, बुझती अँगीठी की आग की तरह। विवशता अलग बात है, मगर कोई इतना निर्लिप्त, इतना तटस्थ कैसे हो सकता है! जिंदा इनसान का खून गरम होता है... आगे मेरे हर तरफ गहरा कुहासा है और उसमें गूँजती मेरी सिसकियाँ! मैं रोना नहीं चाहती, मगर रोती हूँ, खुद से नफरत करते हुए। अपना लिजलिजापन अब नहीं सहा जाता। क्यों हूँ मैं ऐसी! असहाय, विपन्न...

हर क्षण पसलियों में जकड़ा दिल पत्ते की तरह काँपता रहता है। जिया हुआ आतंक शिराओं में धपधपाता है। डर मेरा स्वभाव हो गया है। खून में प्रवहित होता है ऑक्सीजन की तरह। मगर इसमें जीवन नहीं, मृत्यु है - भय से लिथड़ा हुआ! शादी के गुजरे हुए अट्ठारह साल भय की धीमी जहर को बूँद-बूँद जीने जैसा है। दिन के उजाले में खंजर की तरह चमकता हुआ, रात के घुप्प अंधकार में साँप के केंचुल की तरह लसलसाता... अनंत ने मेरे भीतर डर को गहरे रोप दिया है। खाल पर गहरे-हल्के धब्बों के साथ आत्मा में नीले फफूँद की तरह जड़े हुए। एक अर्सा हुआ, मैं हिचकियों में नहीं रोती, खुल कर नहीं बोलती। शिकायत? वह तो कभी नहीं!

अनंत से मेरा प्रेम विवाह था! मैं अक्सर अपनी देह पर पड़ी लाल-नीली धारियों को देखते हुए हैरत से सोचती हूँ, प्यार से बड़ा कोई झूठ हो सकता है? मुझे अनंत के कहे शब्द याद आते - चमकदार, रंगीन मगर खोखले। समंदर के तट पर बिखरे शंख-सीपियों-से। सुंदर और खाली!

सपने और अपेक्षाएँ एक-एक कर टूटी थीं। बहुत मर्मांतक था वह सब। मुखौटे के पीछे का सच - कदाकार, भयावह! यह अनंत ही था जिससे मैंने प्यार किया था! कलई उतरते ही भीतर की बदसूरती अपनी पूरी भीषणता के साथ सतह पर उलीच आया था। एक सुंदर चेहरे और रंग-रोगन के पीछे छिपी सड़ांध देती सोच, गीड़ और कीचड़ से लिथड़ी दृष्टि जो अभाव और अंधकार के सिवा कुछ नहीं देखना चाहता। प्रेम में मैंने मनुष्य को सबसे ऊपर माना था। खून, रंग, औकात की परवाह नहीं की थी। मगर धीरे-धीरे समझ पाई थी, कपड़े और जुबान बदल लेने से खून में दौड़ता संस्कार और भीतर दबा पड़ा समूह मन नहीं बदल जाता। अनंत पर ऊँची शिक्षा, अच्छी नौकरी, मोटी तन्ख्वाह का मुलम्मा तो चढ़ा था, मगर भीतर से वह वही मर्द रह गया था जो उसके दादा, परदादा और पूर्वज थे। वह अपनी सोच से बूढ़ा था, अंधा था। अपनी उम्र और वक्त से सौ साल पीछे कहीं जी रहा था। ओढ़े हुए आचरण के नीचे उसका यथार्थ, उसका आप घात लगाए, दम साधे पड़ा है यह मैं भाँप नहीं पाई थी। मीठे शब्दों के जादू में बँधी उसके साथ सारे दहलीज और लक्ष्मण रेखाएँ पार कर निकल आई थी।

कितना बड़ा दुस्साहस था वह! सोचकर मुझे पसीना आता है। बाउजी, बड़े भैया, दादी... हवेली की ऊँची दीवारें और उससे भी ऊँचे उनके अहंकार, कठोर अनुशासन! इन सबके बीच माँ अलग से याद आती हैं - सूती साड़ी में सर से पाँव तक मुड़ी हुई, एक झुकी हुई काँपती-लरजती छाया... दादी के राज में कभी उनका उघड़ा हुआ चेहरा या उठी हुई आँखें नहीं देखी। भयभीत पशु की तरह इधर-उधर देखती हुई फुसफुसा कर बोलती थीं, उनका सोना-जागना, चलना-फिरना- कुछ भी नजर नहीं आता था। एक परछाईं की तरह चुपचाप इस कोने से उस कोने तक सरकती फिरती थीं। जमींदार घर की बहुओं को सात पर्दों में मूँद कर रहना पड़ता था। माँ भी रहती थीं। उन्हें छत पर जाने नहीं दिया जाता था, खिड़की पर बैठने नहीं दिया जाता था। पैरों पर साँकल पड़ने से पहले मैं अपनी माँ के लिए जाने कहाँ-कहाँ से क्या-क्या चुरा लाती थी - कविता, कहानी की किताबें, रंगीन तस्वीरें, फूल... उन्हें पढ़ने का बहुत शौक था। भर दुपहरी अनाज की कोठरी या धान के गोले के पीछे छिप कर कहानियाँ पढ़ती थीं। हमारे मास्टरजी माँ के गाँव के थे, बचपन के दोस्त। उनके लिए छिपाकर कहानी की किताबें लाते थे।

उन किताबों को माँ तक पहुँचा कर मुझे कितनी खुशी होती थी! लगता था, कोई बड़ा काम किया है। जिस दिन मैंने थाल में पानी डाल कर माँ को उसमें चौदहवीं के चाँद का अक्स उतार कर दिखलाया था, माँ मुझे सीने से लगा कर बहुत रोई थी। रोते हुए फुसफुसाती रही थी - मेरा चाँद! मेरा आसमान! पंख, हवा, धूप... उस दिन मुझे माँ की कही हुई बातें समझ नहीं आई थी। बहुत अजीब लगा था। मगर उनके साथ-साथ देर तक रोती रही थी। आज मुड़कर देखती हूँ तो लगता है, मैंने अपनी विरासत बहुत पहले से सँभाल ली थी। थाल में चमकता चाँद जाने कब सरक कर खिड़की के पार चला गया था। पीछे रह गया था जर्द उजाले का एक धब्बा। बुझे दीए के धुएँ के साथ कमरे में नीम अँधेरा घिर आया था धीरे-धीरे। माँ की लौ देती आँखें भी उसके साथ निष्प्रभ हो आई थीं।

अपनी माँ से ही मैंने निःशब्द रोना सीखा था, पैर दबा कर चलना सीखा था, सिर्फ पानी पी कर रातों को सोना सीखा था... मगर इन सब के साथ ही जाने कब उनसे मैंने सपने देखना भी सीख लिया था। निसिद्ध, वर्जित सपने! एक गहरी, निविड़ रात में चोरों की तरह भागते हुए अपने मायके से स्त्री-धन के रूप में मैं यही ले आई थी - माँ के तमाम डर और इन सब के बीच अनजाने अंखुआया हुआ सपनों का एक काँपता हुआ नन्हा बीज! डर के बीच जीए और पनपे मेरे सारे सपनों का रंग नीला ही था...

इतनी डरपोक रुना इतना बड़ा कदम कैसे उठा पाई! पूरा गाँव मेरी इस हरकत से हैरान रह गया था। कल की सोलह साल की रुना आज इतने वर्षों बाद पीछे मुड़ कर देखती है तो खुद भी सोचती रह जाती है। प्यार ही है जो इतना हौसला दे सकता है। उन दिनों मैं सचमुच प्यार में थी! उस प्यार की याद मुझे आज भी उदास कर जाती है। उसे इस तरह नहीं मरना था...

देर तक रोने के बाद मैं बाथरूम से मुँह धो कर आई थी। घंटा भर गरजने-बरसने के बाद अनंत गाड़ी ले कर बाहर निकल गया था। आज उसकी कला अकादमी की मीटिंग है। बहुत व्यस्त रहता है वह। दर्जन भर संस्थाओं से जुड़ा है। कहीं अध्यक्ष तो कहीं एग्जिक्युटिव मेंबर! बहुत मुश्किल से मुझे ताने देने का समय निकाल पाता है। मार-पीटकर कहता भी है - मेरे पास इतना फालतू समय है कि यही सब करता रहूँ! क्यों मुझे हाथ उठाने पर मजबूर करती हो? कभी सलीके से रह नहीं सकती? अपने सारे उत्पीड़न के लिए अंततः मैं ही दायी ठहरायी जाती।

मैंने धीरे-से झाँककर गौतम के कमरे में देखा था। तकिए में चेहरा गड़ाए वह पेट के बल बिस्तर पर पड़ा था। शायद सो रहा था। पता नहीं! दिन पर दिन जाने यह लड़का कैसा होता जा रहा है। किसी पहेली की तरह। हमेशा चुप और अपने में गुम। जब तक घर में रहता है या तो बत्ती बुझा कर बिस्तर में पड़ा रहता है या बाल्कनी में बैठ कर गिटार बजाता रहता है। उसका गिटार बजाना सुन कर ऐसा नहीं लगता कि कोई धुन बजा रहा है बल्कि गिटार के तार तोड़ने की कोशिश कर रहा है। जाने क्या चल रहा है उसके भीतर, मैं उसे छिप कर देखती हूँ। अकेले में पागलों की तरह अपने पंचिंग बैग में घूँसे बरसाता रहता है। ऐसे समय में उसकी आँखों में, पूरे चेहरे पर एक अजीब-सा जुनून होता है। जैसे सब कुछ तहस-नहस कर देना चाहता है। जाने कैसी दुश्मनी है उसे दुनिया से। देर तक घूँसे बरसाने के बाद जब वह फर्श पर निढाल ढह कर बेतहासा हाँफता है, उसके गिरे हुए कंधे और पसीने से लथपथ पीठ की तरफ देखते हुए मैं अपनी जल उठी पलकों को झपकाती हूँ। जिंदगी से वह मेरी अकेली उम्मीद है - मेरा इकलौता बेटा! उसमें मेरे सपनों को साकार होना था...

धीरे-धीरे कितनी दूर होता जा रहा है वह मुझसे, सबसे! हाथ बढ़ाते ही यूँ छिटक कर अलग हो जाता है! उसकी अनुपस्थिति में उसके कमरे में जा कर उसके सामानों में उसे ढूँढ़ती फिरती हूँ - उसके कपड़ों में बसी उसकी देह-गंध, उसकी किताबें... पूरी दीवार घेर कर उसके पसंदीदा गायकों के आदमकद पोस्टर्स लगे हैं। उनकी तरफ देखते हुए मेरा दिल धड़कने लगता है - गायकों के बल्लम-भाले की तरह नुकीले, रंगे बाल, टैटूज की हुई बाँहें, बिंधे हुए होंठ, जीभ, भौंहें... मर्दों के लिपस्टिक से रँगे होंठ,

मसकारा लगी पलकें - सब कुछ कितना अजीब, एक हद तक भयावह। संगीत के नाम पर भी बस चीख-पुकार और आर्तनाद। जैसे जंग छिड़ी हो! गीतों के बोल और बैंडों के नाम भी भय और अवसाद से भर देते हैं - 'रिवर फ्लोज फ्रोजेन', 'ट्रैल ऑफ टीअर्स', 'कैनिबल कॉर्प्स', 'मेटालिका'... वह किस दहकती दुनिया में रहता है! कैसी मार-काट मची है वहाँ! क्या वहाँ कोई हरा-भरा पेड़ नहीं, सुकून की ठंडी छाँह नहीं! आतंक की दुनिया...

कई सालों से उसके रिजल्ट्स खराब आ रहे हैं। किसी तरह एस.एस.सी. पास किया था। तगड़ा डोनेशन दे कर नामी कॉलेज में दाखिला दिलवाया गया है। आगे बारहवीं की परीक्षा है। रोज अनंत से डाँट खाता है। उसकी हर गलती और असफलता के लिए अनंत मुझे कसूरवार ठहराता है - 'अपने बिगड़ते हुए बच्चे के भविष्य की चिंता ना करके इस उम्र में लेखिका बनने चली है। बेमतलब किलो-किलो कागज काला ना करके उसकी पढ़ाई पर ध्यान दो! बेटा हिप्पी बन रहा है। सर पर पंछियों के घोंसले जैसे बाल, गंदी, फटी जींस..., क्या हाल बना रखा है छोकरे ने!' गौतम कहता कुछ नहीं मगर करता वही है जो करना चाहता है। एक दम ढीठ और बेशर्म।

एक दिन उसकी डायरी के कुछ पन्ने पढे थे। उसे एम.बी.ए. नहीं करना। अपना बैंड बनाना है - 'डेथ विश'! वह मृत्यु से आब्सेश्ड प्रतीत होता है। कंप्यूटर में सेव की हुई उसकी फाईल्स के विषय देख कर भी मैं आतंक से भर उठती हूँ - जघन्य हत्या, सीरियल किलींग्स, भूत-प्रेत पर शोध...

अनंत से एक अर्सा हुए मन खोल कर कोई बात नहीं की जा सकती। ना उसकी इन बातों में रुचि है ना समय। अब तो मेरा भी मन नहीं करता। हर बात पर काटने को दौड़ता है। पैसे और ताकत के मद ने उसे अहंकार से भर दिया है। बाहर वह सबका बॉस है और घर में भी। वह बस हुक्म देता है। कुछ सुनने का धैर्य उसके पास कभी नहीं था। मैं शादी से पहले के अनंत के चेहरे का मिलान आज के अनंत से करती हूँ तो मुझे कहीं कोई साम्य नहीं मिलता। वह अनंत जिसे मैंने जिंदगी की तरह प्यार किया था वह कभी था भी! इतने बड़े भ्रम को मैंने कैसे सच मान लिया था! मुट्ठी से झड़ गए रेत की तरह अपनी जिंदगी के बारे में अब मैं सोचना नहीं चाहती। दिमाग जिंदा बारूद बन जाता है।

कब टूट कर रेजा-रेजा हो जाऊँ... सोच कर दहशत से भर उठती हूँ। अभी मुझे जीना है, गौतम मेरा अकेला दायित्व है। उसे पूरा करना है।

मेरा सारा कहना-सुनना अब सत्य के साथ है। वही है जिसके पास मैं अपने मन की गाँठें खोलती हूँ। वह सुनता है मुझे। उसके पास मेरे लिए हमेशा समय होता है। हजारों किलोमीटर दूर बैठा भी वह मेरे साथ-साथ होता है। मैं सोच नहीं पाती, मेरे लिए यह उसकी करुणा है या प्यार। वो कहता है, प्यार है। मान लेना चाहती हूँ मगर ठिठक जाती हूँ। कुछ इतना खूबसूरत, इतना अनोखा मेरे लिए कैसे हो सकता है! मेरे लिए किस्मत के हाथ हमेशा तंग रहे हैं। कुछ मिला भी तो बहुत कुछ खो कर। एक का मूल्य मैंने अक्सर दो से चुकाया है। थोड़ी-सी खुशी के बदले ढेर सारे दुख मोल लिए हैं। अर्सा हुआ, मन का सहज विश्वास खो गया है। अब किसी तरफ दो कदम निश्चिंत बढ़ा नहीं पाती।

सत्य कहता है, तुम्हें मेरे प्यार पर यकीन नहीं होता? कहो, इस रिश्ते से क्या मिलना है मुझे? अपनी कैद से तुम निकलना नहीं चाहती। फोन, नेट के जरिए एक आभासी दुनिया के हम बाशिंदे बन कर रह गए हैं। कभी तुम्हारा हाथ तक नहीं पकड़ा, कभी पकड़ सकूँगा, यह भी नहीं जानता। फिर भी रात-दिन तुम्हारे साथ हूँ। हूँ ना? तो फिर?

...यही तो विडंबना है! तुम सचमुच मुझसे प्यार करते हो - इस तरह टूट कर। इस सुख को मैं सँभाल नहीं पाती। अर्सा हुआ, सब कुछ खो कर कुछ खोने के डर से परे हो गई थी। अब सत्य को पा कर फिर से डर गई हूँ। मेरे पास खोने के लिए बहुत है - सत्य है! उसका अमित प्यार है! सत्य कहता है, मैं तुम्हारे पास रहना चाहता हूँ, बस तुम्हरा हो कर। मुझे कहीं जाने मत देना। सुन कर मैं बस रोती हूँ। मुझसे इतना सुख नहीं सहता। सुख मुझे डराता है, आशंकित करता है। मुझे उदासियाँ रास आ गई हैं। मैं इनकी आदी हो गई हूँ। सत्य मेरी आदत बिगाड़ने पर तुला है। कहता है, मुझसे अपेक्षाएँ करो, जिद्द करो, मैं तुम्हारे सारे सपने पूरे करूँगा। अपने प्यार से तुम्हें बिगाड़ना चाहता हूँ। अब तक हर खुशी से वंचित रही हो। अब जी लो मुझे। मैं तुम्हारी जिंदगी बनना चाहता हूँ। सुनकर मैं निःशब्द रोती हूँ। फोन के दूसरी तरफ तरफ सत्य गहरी साँस लेता है - फिर रोने लगी ना? उससे कुछ नहीं कहती मगर चाहती हूँ वह मुझे रोने दे। खुशी में रोने का मौका जिंदगी में पहली बार इस तरह आया है... अक्सर सोचती हूँ, जाने सत्य किसे चाहता है... मुझे या मेरी कहानियों की रचयिता को! वह शून्य में खड़ा होना चाहता है, हवा में आश्रय ढूँढ़ रहा है। घर की नींव को जमीन का आधार चाहिए वह सोचता नहीं। सपने सुंदर होते हैं मगर उनमें हमेशा जिया जा सकता है क्या!

भीतर वर्षों की उदासियाँ इकट्ठी थी, उन्हें बाहर उलीचना जरूरी था वर्ना साँस घुट जाती। कलम हाथ में पकड़ी तो मन बह निकला। शब्दों का ज्वार उठा। मेरी लेखनी ने

मेरे जीवन के सारे क्लेश को अपने में समेट लिया। एक बार छपी तो बस छपती चली गई। मगर किंचित खुशी के साथ ढेर-सी परेशानियाँ आईं। बाहर दुनिया थी तो घर में अनंत। हमेशा दंश देने को तैयार। हर वह चीज जो मुझे दुनिया से जोड़े, मुक्त करे, पहचान और व्यक्तित्व दे, उसे उससे नफरत थी। मैं उसकी मिल्कियत हूँ, उसकी जागीर, उसके घर में पड़ी रहूँ। फिर चाहे मुझमें घुन लग जाए या जंग, उसे परवाह नहीं। मैं रोऊँ, जिंदगी भर रोऊँ, उसे कोई ऐतराज नहीं। ऐतराज है उसे सिर्फ मेरी खुशी से, मुस्कराहट से, आजादी से। मैं उसके दिए दुख में जिऊँ, उसी के दुख में मर जाऊँ... उसका पुरुष अहंकार इससे ज्यादा सोच नहीं पाता। मैं छपने लगी हूँ, मेरा लिखा सराहा जाता है, मेरी पहचान बन रही है। यह सब उसके बर्दाश्त के बाहर है। रात-दिन लताड़ कर, मेरा मखौल उड़ा कर वह मेरे आत्मविश्वास को तोड़ देना चाहता है। चाहता है कि अपनी आखिरी कोशिश को छोड़ कर मैं पंगु बन जाऊँ। शायद मैं बन भी जाती। मगर सत्य ने, उसके प्यार ने मुझे ऐसा होने से बचा लिया। यह उसीका दिया विश्वास है जो मैं खुद पर ला सकी। मैं चल नहीं पाती, लड़खड़ा कर गिर-गिर पड़ती और ऐसे में सत्य हर बार बढ़ कर मुझे सँभाल लेता। कहता, उठो, फिर कोशिश करो, तुम ऐसा कर सकती हो... और उसके शब्दों के तिलस्म से बँधी मैं फिर से चल पड़ती। उसका मुझ पर विश्वास, प्यार मेरा बैशाखी नहीं, मेरा हौसला बन गए थे।

अनंत की निर्ममता और गौतम की उदासीनता के विराट शून्य के बीच यदि मेरे पास कुछ था तो वह सत्य का साथ था। दूर एक अलग शहर में बैठा वह हर क्षण मेरे साथ होता था। एक बार शहर में लगे पुस्तक मेले में उससे मुलाकात हुई थी। मेरी सद्यः प्रकाशित पुस्तक में मेरा हस्ताक्षर लेने अचानक सामने खड़ा हुआ था। उस छोटी-सी मुलाकात में एक जादू-सा घटा था। कुछ पलों के लिए हम स्तब्ध-से रह गए थे। उसी समय अनंत मुझे वहाँ से खींच ले गया था। उसके बाद आई थीं उसकी चिट्ठियाँ, फोन... वर्षों से बंजर पड़ी जमीन के एक टुकड़े पर जीवन अंखुआया था। हरियाली की कुछ छींटें पड़ी थी अजाने ही!

हर जगह मैं सज-धज कर अनंत के पीछे-पीछे चलती हूँ। अनंत शान से अपनी सुंदर पत्नी का परिचय सब से कराता है - मेरी मिसेज, मिसेज कुमार! मेरा कोई नाम भी नहीं इस परिचय में। लोग दूर से मुझे हाथ जोड़ कर मेरा अभिवादन करते हैं - नमस्ते भाभी! या हेलो मिसेज कुमार! इसके बाद सब मुझे नजरंदाज कर देते हैं। मैं घंटों किसी कोने में बैठी जम्हाइयाँ लेती रहती हूँ या मेरी ही तरह किसी बड़े आदमी की सजी-धजी पत्नी से इधर-उधर की दो-चार औपचारिक बातें करने की कोशिश में और-और बोर होती हूँ। इस बीच अनंत पूरी महफिल में छाया रहता है। ठहाके लगाता

है, किसी से हाथ मिलाता है, लोगों से घिरा जाने क्या-क्या डिस्कस करता रहता है। यह अत्याचार मैंने वर्षों झेला है। मगर मेरे साथ एक-दो कार्यक्रमों में जा कर ही वह झल्ला उठा था। लोग मुझे मेरे नाम से जानें, उसका परिचय मेरे पति के रूप में कराया जाय, यह उससे बर्दाश्त नहीं होता। मेरे परिचितों से वह बेरुखी से पेश आता है। उसका व्यवहार भी अपमानजनक होता है। सारे साहित्यकार, संपादक, प्रकाशक उसके लिए चिरकुट और फटीचर होते हैं - तुम्हारे यह मनहूस साहित्यकार! झोला-थैला, दाढ़ी छाप! पान चबा-चबा कर बौद्धिक चर्बण का ढोंग! काम-धाम कुछ नहीं, बैठ-बैठ कर भाषण। जब तक बेकार हैं कम्युनिस्ट हैं, कल रोटी-दारू का जुगाड़ हो जाय, कैपिटलिस्ट हो जाएँगे। अंगूर खट्टे हैं और क्या! चले हैं दुनिया बदलने!

कितना विरोधाभास है उसके स्वभाव में। इधर साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थानों में मुख्य अतिथि के रूप में भाषण करते हुए दुनिया-जहान की अच्छी-अच्छी बातें करता है और घर में उसी साहित्य-कला का श्राद्ध करता रहता है। कितने चेहरे हैं उसके! सहूलियत के हिसाब से ओढ़-उतार लेता है। इन मुखौटों की भीड़ में सबसे कुरूप है उसका अपना चेहरा जिससे शायद सिर्फ मैं परिचित हूँ।

सत्य हर क्षण मेरे साथ होता है फिर भी मैं धीरे-धीरे अपना हौसला खोती जा रही हूँ। अनंत ने मुझे वर्षों पहले निराश कर दिया था। मगर गौतम का मूक विद्रोह, हर तरह से निर्लिप्त हो जाना, किसी अजनबी की तरह... मुझसे सहन नहीं रहा। इन दिनों एक नया सगल पाल लिया है उसने- विडियो गेम! कॉलेज के बाद का अधिकतर समय इसी में बिताता है। कभी सारी-सारी रात! सुबह समय पर उठ नहीं पाता। हर दूसरे दिन कॉलेज का प्रिंसिपल या टीचर मुझे बुला कर शिकायत करते हैं। खाना-पीना भी एक तरह से भूल गया है। पूछने पर तरह-तरह के बहाने बनाता है। कितना चिड़चिड़ा हो गया है! एक बात का सीधे मुँह जवाब नहीं देता। उसके कमरे के डस्टबिन से उस दिन सड़े हुए अंडे, फल और टोस्ट मिले थे। जाने कब से नाश्ता नहीं किया था! अनंत को कहते डर लगता है। उसके पास सारे मर्ज की एक ही दवाई है - मार! गौतम जब छोटा था, हर बात पर उसे बेरहमी से पीट देता था।

कई बार तो छड़ी और बेल्ट से भी। उसे बचाते हुए कितनी बार मैं खुद जख्मी हो चुकी थी। पहले-पहल जब कभी अनंत मुझ पर हाथ उठाता था, गौतम आ कर मुझसे लिपट जाता था। तीन साल पहले ऐसे ही एक मौके पर अनंत ने उसे बेल्ट से बुरी तरह पीटा था। अनंत ना जाने किस-किस के नाम से मुझे ताने दे रहा था उस दिन। मेरा कसूर यह था कि मैंने रात के दस बजे किसी लेखक का फोन उठा लिया था। मैं जानती थी गौतम अपने कमरे में जाग रहा होगा इसलिए मुँह बंद किए सब सुने जा रही थी।

https://www.hindiadda.com/driving-license/

कितनी बार हाथ जोड़कर कर उससे मिन्नत की थी कि वह इतनी जोर से ना बोले। मगर अनंत हमेशा की तरह कुछ भी बके जा रहा था। और फिर वही हुआ था जिसका मुझे डर था। बीच में अचानक कहीं से गौतम आ खड़ा हुआ था। अपनी मुट्ठियाँ भींच-भींचकर जाने क्या कुछ बोल गया था अनंत से उसने उस दिन। सुन कर कुछ देर के लिए तो अनंत भी सकते में आ गया था, फिर उसने गौतम को बुरी तरह पीटा था। गौतम सात दिनों तक बिस्तर पर पड़ा रह गया था। उसे किसी तरह समझा ना पाने के कारण दुख, हताशा और अपमान से झुलस कर मैंने भी उसे कह दिया था कि बड़ों के बीच उसे आइंदा कुछ बोलने की जरूरत नहीं।

उसके बाद जाने क्या हुआ था, गौतम एकदम अपने आप में सिमट गया था। उसका बोलना, जिद करना, झगड़ना - सब बंद हो गया था। किसी अजनबी की तरह। सबके बीच रह कर भी अपने आप में संपृक्त, उदासीन!

कितनी कोशिश करती हूँ उसकी चुप्पी तोड़ने की! हर बार किसी अदृश्य दीवार से टकरा कर लौट आती हूँ। गौतम ने अपने और हमारे बीच जाने कितनी गहरी खाई खोद ली है। सत्य कहता है - उसे जरा समय दो। प्युवर्टी से गुजर रहा है। भीतर हॉरमोन तांडव मचा रहा होता है इस समय। इस उम्र में ऐसे मूड स्वीइंग्स स्वभाविक है। यह समय उसे परेशान करने का नहीं, साथ देने का है। उसे समझाने से ज्यादा समझो। उसे उसका स्पेस दो। सब ठीक हो जाएगा... मैं सत्य की बात पर यकीन करना चाहती हूँ मगर अंदर का डर खत्म नहीं होता। जाने गौतम किस दिशा में चल पड़ा है!

मेरी हर समस्या का एक ही समाधान है सत्य के पास - मेरे पास चली आओ! इतना सहज है क्या यह सब! फिर गौतम! उसका क्या? उसे तो इस समय सबसे ज्यादा मेरी ही जरूरत है। उसे उसके हाल पर छोड़कर अपनी खुशी के पीछे हो लूँ? क्या गौतम के बिना कहीं कोई खुशी हो सकती है मेरे लिए? ऊन के लच्छों की तरह मेरे इर्द-गिर्द सवाल के घेरे पड़ते जाते हैं और मैं आपादमस्तक उलझ कर रह जाती हूँ।

आज फिर एक बार अनंत के सामने जा कर खड़ी होना पड़ेगा। लखनऊ में 'साहित्याकाश' पत्रिका का स्थापना दिवस है। मुझे भी एक वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया है। इस बार जाना जरूरी है। पिछले कई कार्यक्रमों को टालती आई हूँ। कौन जा कर अपना मजाक बनाए। एक-दो बार का अनुभव ही काफी है। अनंत मुझे कहीं अकेली जाने की इजाजत नहीं देता और साथ जाने के लिए उसके पास समय नहीं। साफ कह चुका है, मेरी इजाजत के बगैर घर से कदम बाहर रखने से पहले तलाक के

पेपर पर साइन करके जाना। फिर देखता हूँ तुम्हारा कौन फटीचर आशिक तुम्हें पनाह देता है। दूर बैठ कर फोन पर या व्हाट्स अप पर दूसरों की बीवियों से मीठी-मीठी बातें करना आसान होता है। जिम्मेदारी उठानी पड़ी तो दो दिन में प्रेम के देव कूच कर जाएँगे। फिर तो हवा फाँक कर तुम जी नहीं पाओगी। दस-बीस कहानियाँ लिख कर साल भर में जो दो-चार हजार कमा लेती हो उससे तो गुजर होने से रही!

एक बार किसी तरह साथ चलने को तैयार भी हुआ तो पूरे कार्यक्रम के दौरान इस बेशर्मी से मेरी निगरानी करता रहा कि लोगों में तमाशा बन गया। हर आने-जाने वाले लोगों को घूर-घूर कर देखता रहा, किसी ने अभिवादन किया तो बड़ी बेरुखी से उसे जवाब दिया, सब के बीच बैठ कर निर्लज्ज ढंग से अपनी डींगे हाँकता रहा। किसी अप्रिय घटना को टालने के लिए मैं भय से तटस्थ रही। यहाँ तो लोगों को गॉसिप के लिए कोई बात मिल जाय! जब वह बढ़ कर किसी से मेरे बारे में पूछताछ करने लगता था, मैं मन ही मन प्रार्थना करने लगती थी। घर लौट कर भी महीनों तक उसने किसी ना किसी बात को ले कर मेरा जीना दूभर कर रखा था। अचानक बीच रात को मुझे झिंझोर कर जगा कर पूछने लगता - तुमने तो कहा था पिछले बुक फेयर में आलोक शास्त्री नहीं मिले थे जबकि इस बार उनकी बीवी ने बताया वे आए थे? गहरी नींद से अचानक जग कर मैं उसकी बात समझ नहीं पाती और उल्टा-पल्टा जवाब पा कर उसका गुस्सा सातों आसमान पर पहुँच जाता। मेरी हर कहानी पढ़ कर बोलता - इसकी नायिका तुम ही हो ना? कब मिली थी तुम अपने उस फटीचर मास्टर से? यानी मेरा शक सही निकला, पिछली गर्मी में तुम अपनी सहेली के बेटे के जनेऊ संस्कार में नहीं गई थी। बीच में ट्रेन से उतर कर अपने मास्टर के साथ दो दिन गुजार कर आई थी! मैं उसे समझा नहीं पाती, कोई कहानी पूरी तरह काल्पनिक भी हो सकती है। अपनी हर कहानी की नायिका मैं हो नहीं सकती।

इस बार भी वही हुआ जो हर बार होता आया है। अनंत ने मुझे कार्यक्रम में जाने देने से साफ इनकार कर दिया था। अपनी सारी हिम्मत जुटा कर मैंने बहस करने की कोशिश की थी मगर कोई लाभ नहीं हुआ था। अंत में फिर जलील हो कर कमरे से निकल आई थी। बाल्कनी में बैठ कर किसी तरह अपनी सिसकियों पर काबू पाने की कोशिश कर रही थी जब गौतम को अपने पीछे खड़ा पाया था। वह जाने कैसी नजरों से मुझे घूर रहा था। उसकी आँखों से झलकते अजीब-से भाव ने मुझे यकायक सहमा दिया था। क्या था उनमें? नफरत, गुस्सा, वितृष्णा या गहरी उपेक्षा? भीतर कहीं गहरे कुछ अनायास दरका था - कैसे अजनबियों की तरह खड़ा है! जैसे उसे मेरी किसी बात से कोई मतलब ही नहीं। मेरे दुख, मेरे आँसू - क्या कुछ भी अब उस तक नहीं पहुँचते? उसे देख कर मेरे

भीतर कोई नाड़ी खींचती है, बहते खून में थक्के-से पड़ने लगते हैं मगर वह! उसके भीतर क्या कुछ भी जिंदा नहीं बचा है। शायद सच ही कहते हैं लोग, खून एक दिन जरूर रंग लाता है। अनंत का खून अब इसमें भी बोलने लगा है।

मेरी सोच से बेपरवाह गौतम ने निर्लिप्त आवाज में कहा था - 'नाउ आई एम ऐट्टीन। कल से मैं ड्राईविंग क्लास ज्वाइन कर रहा हूँ।' कह कर वह मुड़ कर धीरे-धीरे चला गया था और मैं उसके पीछे एक भयावह अकेलेपन से घिर गई थी, रोते हुए सत्य को फोन किया था। वह कहीं भी हो, मेरे साथ होता है। कहता है, अकेला इनसान हूँ, जब जरूरत हो आवाज दे लेना, हाजिर हो जाऊँगा। फोन उठाते ही उसने कहा था - 'बस, अब चली आओ...' सुन कर मैं बस रोती रही थी। मेरे पास इसके सिवा और कोई दूसरा जवाब नहीं होता उसके लिए। वह भी जानता है मेरी इस बात को। इसलिए मुझसे कभी कोई जवाब की उम्मीद भी नहीं करता। कहता है, तुम्हारे हिस्से आँसू आए हैं, मेरे हिस्से इंतजार... कई बार मैं झल्ला कर पूछती हूँ - क्यों इतना बर्दाश्त करते हो मुझे? वह हँस कर टाल जाता - क्या करूँ, प्रेम का कोई विकल्प जो नहीं होता!

आज जैसे मेरे सब्र का बाँध टूट गया था। सत्य के सामने मन की सारी गाँठें खोल कर बैठ गई थी - गौतम को मैं समझ नहीं पा रही सत्य! वह ऐसा क्यों है! वह मेरा बेटा है, मेरा हिस्सा... मैं उसकी मजबूरी समझ सकती हूँ मगर उसकी ऐसी उदासीनता! दुख के क्षणों में उसका बस मेरे कंधे पर एक हाथ रख देना काफी होता। तरस जाती हूँ उसके दो बोल के लिए... तुम समझते हो ना, किसी की चुप्पी भी मार देती है इस तरह? सत्य ने मुझे धैर्य से सुना था, हर बार की तरह समझाया भी था - कहा ना, इतना जजमेंटल मत बनो। उसकी नसों में तुम्हारा भी खून बहता है और वह पानी नहीं है। उसका रंग भी बोलेगा एक दिन, देखना... इतनी आशाएँ कहाँ से ला पाता है वह! अँधेरा कभी घेरता नहीं उसे?

गौतम जिस चीज के पीछे पड़ता है, बस पड़ जाता है। इन दिनों सब कुछ छोड़ कर ड्राइविंग सीखने में लगा हुआ है। जब देखो कभी घर की गाड़ी, कभी दोस्तों की गाड़ी ले कर सामने के मैदान में चक्कर लगाता रहता है। उस दिन कहा भी था, लर्निंग लायसेंस के साथ इतनी दूर तक ना जाया करे। वह कभी सुनता भी है मेरी! सुबह उठ कर गाड़ी ले कर निकल जाता है। कॉलेज के बाद भी। एक दिन अनंत की गाड़ी भी कहीं से ठोंक लाया था। उस दिन से अनंत ने अपनी गाड़ी उसे देनी बंद कर दी थी। मुझे गौतम की हड़बड़ी देख कर चिंता हो रही थी। क्यों हर बात को ले कर वह इतना ऑब्सेस्ड हो जाता है! मेरी बात सुन कर सत्य हँसता रहा था - यार तुम्हारा एक ही काम है चिंता करना! टेक इट इजी! गौतम से पूछा कि उसे किस बात की जल्दी है, 22

दिन का कोर्स तो पूरा करना ही पड़ेगा तो चिढ़ कर जवाब दिया उसे बड़े होने की जल्दी है, मर्द होने की जल्दी है! उसके जवाब ने मुझे सन्न करके रख दिया। तो उसे मर्द बनना है! लगा था मैं उसे इनसान बनाने में नाकाम रही! वो मेरी कोई इज्जत नहीं करता, तभी तो इस तरह से बात करता है। ठीक भी तो है, जिस औरत को वह रात-दिन इस तरह से प्रताड़ित होते हुए देखता है उसके प्रति उसके मन में सम्मान आए भी तो कैसे! जीवन का एक और मोर्चा मैं हार गई थी। अब दुख मनाने का भी सामर्थ्य नहीं। हाँ, एक ग्लानि है, भीतर तक खाती हुई। जाने अंदर अब कुछ बचा भी है कि नहीं। सत्य से भी यह बात शेयर नहीं कर पाई थी। चोर की माँ को रोने का भी सुख कहाँ - बचपन में सुनी थी यह बात, अपनी माँ से। माँ! मेरे भीरु मन में आज भी तुम ही जीती हो। तुमसे छूटना चाहती हूँ मगर कभी छूटना नहीं चाहती।

आज गौतम की ड्राइविंग की परीक्षा है। सुबह उठ कर गया है। रात भर अजीब बेचैनी में रहा। कई बार कमरे में झाँक आई थी। हर बार बाल्कनी में टहलते हुए पाया। भोर रात तक स्टडी टेबल का लैंप जल रहा था। उसे मर्द बनने की जल्दी है, अपने पिता की बिरादरी में शामिल होना है... सोच-सोच कर मन डूबता रहा था। तुम्हारे पिता ही क्या कम थे मेरे जीवन में... आज कल उससे भी इसी तरह मन ही मन बात करने लगी हूँ। आमने-सामने तो संभव नहीं हो पाता।

दफ्तर जाने से पहले अनंत भी आ कर सुबह-सुबह मुझसे उलझ गया था। मैंने एक बार फिर उससे लखनऊ जाने की बात की थी। बात बढ़ते-बढ़ते बहुत बढ़ गई थी। उसने ड्राइवर के सामने अपनी फाइल मेरे मुँह पर दे मारी थी। कुछ लोगों के उसी समय उससे मिलने आ जाने पर वह उठ कर चला गया था। मैंने मुड़ कर देखा था, घर का माली, चौकीदार - सब हमें देख रहे थे। नौकरानी के चेहरे पर कौतुक के भाव थे। वह मुस्कराती आँखों से जैसे मुझे मुँह चिढ़ा रही थी। मैं जानती हूँ, वह अनंत की मुँह लगी है। मेरी मजम्मत से उसे खुशी मिलती है। ओह! कितना अपमानजनक था यह सब! अपने कमरे में बैठी रोती रही थी। रह-रह कर सत्य के शब्द याद आते रहे थे - बस, अब चली आओ... कैसे चली जाऊँ! मैं अपने नाल से बँधी हूँ! बच्चा देह से अलग हो जाता है, रूह से नहीं! एक अदृश्य नाल जीवन भर माँ को अपने बच्चे से जोड़े रखता है। यह बंधन किसी के काटे नहीं कटता... काश तुम्हें यह बात समझा पाती सत्य! तुम कहते हो तुम गौतम को भी अपनाओगे, मगर वह अपनी मर्जी का मालिक है, मेरी बात समझेगा भी!

जाने मैं कितनी देर तक रोती रही थी। जब गौतम आया था, मैं बाथरूम से मुँह धो कर बाहर निकल रही थी। वह यकायक मेरे सामने आ खड़ा हुआ था। उसके चेहरे पर

अजीब-से भाव थे। मेरा मन सहम उठा था। जाने अब इसको क्या हुआ! थोड़ी देर चुप रह कर गौतम ने अचानक झुक कर मेरे पैरों में प्रणाम किया था - मुझे ड्राइविंग लाइसेंस मिल गया माँ! उसके इस अनायास बदले हुए तेवर से मैं चकित रह गई थी। अचानक उसे क्या हुआ! मेरे चेहरे पर आए भाव को देख कर शायद उसने मेरी मनःस्थिति भाँप ली थी। रुक-रुक कर बहुत सधी, सयंत आवाज में कहा था - मैं अब तक अपने बड़े होने के इंतजार में था माँ... ताकि तुम्हें इस घर से बाहर ले जा सकूँ... उसकी बात सुन कर मैं कुछ भी कह नहीं पाई थी, चुपचाप उसकी तरफ देखते हुए खड़ी रह गई थी। मुझे अपने कानों पर यकीन नहीं हो पा रहा था। अपना चेहरा झुकाते हुए उसने अब धीमी आवाज में कहा था - मैंने सत्य जी के कई पत्र देखे हैं, फोन पर तुम लोगों की बात भी...

उसकी बातों से जाने अचानक मेरे भीतर क्या घटा था। सैकड़ों जंग खाई सलाखें एकसाथ चरमराई थीं। कोई दीवार गिरी थी। मैं थहरा कर जमीन पर बैठते हुए एकदम से फूट पड़ी थी - और तू गौतम...? उसने मेरे बगल में बैठते हुए मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया था - अब मैं पढ़ना चाहता हूँ माँ, आस्ट्रेलिया के एक कॉलेज में मैंने दाखिले के लिए अप्लाई कर दिया है। बस दो-चार साल की बात है... उसकी बातें सुनते हुए मैं निःशब्द रोती रही थी - सचमुच मेरा गौतम कितना बड़ा हो गया है! थोड़ी देर बाद मुझे हाथ पकड़ कर खड़ी करते हुए गौतम ने अपनी जेब से कार की चाभी निकाली थी और मुझसे पूछा था - कहो, तुम्हें कहाँ जाना है? मैं पहुँचा आऊँगा!